भारतीय लोकतंत्र की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव ,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ.प्र.)

शोध सारांश

वैश्विक इतिहास के अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि विश्व के विभिन्न राज्यों में राजतंत्र, श्रेणीतंत्र, अधिनायकतंत्र व लोकतंत्र आदि शासन प्रणालियां काफी समय से प्रचलित रही हैं। इतिहास इस तथ्य का साक्षी रहा है कि भारत में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली का आरम्भ पूर्व वैदिक काल से ही हो गया था। इस तत्कालीन समय में कुछ प्रतिनिकाय और लोकतंत्रात्मक स्वशासी संस्थाएँ विद्यमान थीं। लोकतंत्र में लोक का अर्थ जनता और तंत्र का अर्थ व्यवस्था से है। अतः लोकतंत्र का अर्थ हुआ जनता का राज्य। इस प्रकार लोकतंत्र उस शासन प्रणाली से है जिसमें जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों के द्वारा सम्पूर्ण जनता के हित को दृष्टि में रखकर शासन करती है। आज भारतीय लोकतंत्र अपने सत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर चुका है और इसमें एक नया कुलीन वर्ग अपनी तय की हुई शर्तों के अनुसार विकसित हो रहा है। अब तक के सामाजिक,राजनीतिक और ऐतिहासिक विश्लेषणों में बहुत बड़ा होते हुये भी यह वर्ग सीमित और संकुचित हैं। अत्याधुनिक बहुराष्ट्रीय व्यक्तित्वों वाले आज के भारत में पिछले सौ वर्षों से विकसित होते हुये इस वर्ग ने अपनी खास पहचान बना ली है।

Key Words: *गणतंत्र,राजतंत्र,अधिनायकतंत्र, लोकतंत्र या जनतन्त्र,इतिहास, भारत,आजादी, चुनौतियाँ और संभावनाएँ ।*

विश्व में विविध प्रकार की शासन प्रणालियाँ प्रयोग में लायी जा रही हैं। इन प्रचलित प्रणालियों में गणतंत्र, राजतंत्र, अधिनायकतंत्र, लोकतंत्र या जनतन्त्र आदि महत्वपूर्ण हैं। इन सब में कौन सा तंत्र सर्वश्रेष्ठ है इस प्रश्न का निरपेक्ष उत्तर नहीं दिया जा सकता है। इन प्रत्येक तन्त्रों में कुछ अच्छाइयाँ और कुछ कमियां हो सकती हैं। वास्तव में देखा जाये तो अभी तक कोई भी तंत्र समग्र रूप से उचित रूप से प्रमाणित नहीं हो पाया है। कुछ अपवादों को छोड़कर देखें तो फिर भी वर्तमान में अधिकतर लोगों का झुकाव लोकतंत्र की ओर अधिक झुकता प्रतीत होता है। दुनिया के अधिकतर देशों में लोकतांत्रिक पद्धति से शासन का संचालन हो रहा है। अर्थात जहाँ लोकतंत्र नहीं है, वहाँ के लोग इसके सपने देख रहे हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य तंत्रों की तुलना में लोकतंत्र या जनतन्त्र के प्रति जनमानस में प्रबल आस्था दिखती है।

लोकतंत्र में लोक का अर्थ जनता और तंत्र का अर्थ व्यवस्था से है। अतः लोकतंत्र का अर्थ हुआ जनता का राज्य। इस प्रकार लोकतंत्र उस शासन प्रणाली को कहते हैं जिसमें जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों के द्वारा सम्पूर्ण जनता के हित को दृष्टि में रखकर शासन करती है। राज्य की उत्पत्ति के समय से ही समयानुसार शासन के

विविध प्रकार परिवर्तित होते रहे हैं। लोकतंत्र समस्त जनता से नैतिक समर्थन तथा अनुकूल आचरण की अपेक्षा रखता है। संस्कृत साहित्य में 'लोकतंत्र' शब्द का प्रयोग जनता के राज्य के अर्थ में नहीं वरन् शासन अथवा राजकार्य के सामान्य अर्थ में हुआ है, जैसे महाभारत में कुबेर ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया है –

युधिष्ठिर, धृतिर्दाक्ष्यं देशकाल पराक्रमः।

लोकतंत्र विधाना नामेष पंचविधो विधि।।

(महाभारत 3.162.1)

युधिष्ठिर–धैर्य, दक्षता, देश, काल और पराक्रम – ये पांच राज्य कार्य की सिद्धि हेतु सहायक मानते हैं।

लार्ड ब्राइस ने लिखा है कि सही अर्थ में लोकतंत्र ईसाई धर्म की देन है, जिसका सिद्धान्त प्रारम्भ से आज तक ईश्वर के सम्मुख सभी मनुष्यों की समानता पर बल देता रहा है।'' इसी तरह इटली के प्रसिद्ध राष्ट्रनेता मात्सिनी ने भी लोकतंत्र के धार्मिक आधार की ओर संकेत करते हुये लिखा है कि यदि किसी चीज ने कभी मुझे आश्चर्यचकित किया है तो वह यह है कि इस आन्दोलन की स्पष्ट धार्मिक विशेषता (चरित्र) के प्रति अभी तक कितने ही लोगों ने ध्यान नहीं दिया है।

विश्व के इतिहास पर यदि दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि विश्व के विभिन्न राज्यों में राजतंत्र, श्रेणीतंत्र, अधिनायकतंत्र व लोकतंत्र आदि शासन प्रणालियां प्रचलित रही हैं।'' ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करें तो भारत में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली का आरम्भ पूर्व वैदिक काल से ही हो गया था। इस समय कुछ प्रतिनिकाय और लोकतंत्रात्मक स्वशासी संस्थाएं विद्यमान थीं। ऋग्वेद् में गण से अर्थ गणना अथवा संख्या से था और गणराज्य का आशय लोकतंत्र था। सभा तथा समिति नामक संस्थाओं का उल्लेख ऋग्वेद् एवं अथर्ववेद में मिलता है। इन समितियों के माध्यम से एक ठोस राजनीति का एहसास होता है क्योंकि सभा एवं समिति के निर्णयों को लोग आपस में वाद–विवाद के रूप में स्वस्थ दृष्टिकोण से निपटाते थे। इन समितियों में विभिन्न विचारधारा के लोग कई दलों में बंटकर आपसी सलाह मशविरा कर अन्तिम निर्णय ले लेते थे। कभी–कभी इन सभा एवं समिति के सदस्य आपसी झगड़े की स्थिति में भी पहुँच जाते थे। अर्थात ''वैदिक काल से ही द्विसदनीय संसद की शुरूआत मानी जा सकती है। वैसे महाभारत के शांति पर्व में 'संसद' नामक एक सभा का उल्लेख भी मिलता है क्योंकि इसमें आम जनता के लोग होते थे, इसे जन सदन भी कहा जाता था। लगता है, आधुनिक संसदीय लोकतंत्र के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य जैसे निर्बाध चर्चा और बहुमत द्वारा निर्णय तब भी प्रचलित थे। बहुमत से हुआ निर्णय अलंघनीय माना जाता था, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती थी क्योंकि जब सभा में लोग मिलते हैं और एक वाणी से बोलते हैं तो उस वाणी और बहुमत की अन्य लोगों द्वारा उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

वैदिक काल के पश्चात इतिहास में छोटे–छोटे गणराज्यों का वर्णन मिलता है जिनमें लगभग सारी जनता एक साथ मिल–बैठकर शासन से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार करती थी। आत्रेय ब्राह्मण, पाणिनि के अष्टाध्यायी, कौटिल्य के अर्थशास्त्र महाभारत, अशोक स्तम्भों के शिलालेखों, समकालीन इतिहासकारों तथा बौद्ध एवं जैन विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थों में तथा मनुस्मृति में इसके पर्याप्त ऐतिहासिक साक्ष्य मिलते हैं। गणराज्य को प्राचीनकाल में प्रजातांत्रिक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जाता था। महात्मा गौतम बुद्ध के समय उत्तरी भारत के वणिक दक्षिण भारत गये और वहाँ के राजा ने पूंछा वणिको वहाँ कौन राजा है ? उन्होंने उत्तर में कहा 'देव केचि देशागजाधीनाः केचिद्राजाधीनाः' अर्थात महाराज कुछ देशों में तो गण का शासन है और कुछ में राजाओं का/गण

शब्द का अर्थ लोग कबीले से लेते थे, लेकिन इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि गण का अर्थ शासन पद्धति से है। गण का अर्थ है समूह, गणराज्य का अर्थ है समूह द्वारा संचालित राज्य अर्थात बहुत से लोगों द्वारा संचालित राज्य अर्थात प्रजातंत्र। खुदाई के दौरान कुछ विद्वानों पर भी राजाओं के चित्रों के बजाए गणों के नाम मिलते हैं। जैसे – 'मालवगण की जय हो यौधेयगण की जय हो, आर्जुनायनों के गण की जय हो।''

गणराज्यों का आगे चलकर मौर्य, गुप्त, हर्षकाल में ग्राम सभाओं व पंचायतों के रूप में विकास दृष्टिगोचर होता है। ये ग्रामीण व्यवस्था को सम्पूर्ण देखरेख के साथ न्याय प्रशासन का कार्य भी देखती थीं। उ. प्र. के पूर्वी तथा बिहार के उत्तरीय प्रदेशों में शाक्य, मल्ल, लिच्छिवि और विदेह के गणराज्यों का पर्याप्त विस्तार था। गणराज्य एक प्रकार से पूर्व में स्थापित जनपदों का ही विकसित स्वरूप था। ''बुद्ध ने जिन्हें महाजनपद कहा था, इन्हीं जनपदों ने आगे चलकर गणतंत्र का रूप ले लिया जो न केवल जागरूक और सुसंगठित लोकतंत्रों के विधान और नियमों के प्रति आजकल के लोकतंत्रों से कुछ भी कम आस्था नहीं रखते थे। ये गणतंत्र मुस्लिम काल तक अपनी स्वाधीनता कायम रखने में सफल हुये, किन्तु अंग्रेजों ने सन् 1841 ई0 में इन्हें समाप्त कर दिया।''

प्राचीन भारत की बात करें तो ग्रीस एवं भारत में प्रजातंत्र के रूप दिखते हैं। लेकिन मध्यकाल तक आते–आते विश्व में राजतंत्र व एकतंत्र की प्रणाली अधिकतर देखने को मिलती है। जहाँ एक ओर प्राचीनकाल एवं मध्यकाल में राजा को ईश्वर के समान माना जाने लगा। वहीं अठारहवीं सदी के तीसरे दशक में फ्रांस की महान क्रांति ने इतिहास की दशा–दिशा को ही बदल दिया। इस क्रांति के द्वारा राजा को समाप्त कर दिया गया। इसके पहले इंग्लैण्ड में चार्ल्स के वध 17वीं सदी में राजतंत्र के विरूद्ध क्रांति हो चुकी थी। परन्तु यह बहुत कम समय के लिये था। यहीं से राजतंत्र के स्थान पर प्रजातंत्र की स्पष्ट शुरूआत मानी जा सकती है। डॉ0 सन्यात सेन ने सन् 1912 ई0 में नवचीन का निर्माण कर प्रजातंत्र की स्थापना की। वैश्विक परिदृश्य की कुछ घटनाएं सन् 1914 ई0 में जर्मनी से कैसर की समाप्ति, सन् 1917 ई0 में रूस में जार निकोलस की हत्या, सन् 1931 ई0 में स्पेन के राजा अलफेंसों की हार। इटली में मुसोलिनी, जर्मनी से हिटलर की समाप्त से राजतंत्र से प्रजातंत्र की ओर विश्व अग्रसर हुआ। इतना तो स्पष्ट है कि सभ्य समाजों में शासन की जितनी प्रणालियों का आविष्कार एवं प्रयोग हुआ है उनमें लोकतंत्र सबसे अधिक व्यापक रूप से स्वीकृत प्रणाली रही है। इसका कारण केवल यह नहीं है कि उसमें अधिकतम जनसमुदाय के अधिकतम कल्याण का लक्ष्य रहा है बल्कि मुख्य रूप से यह है कि इसमें निर्णय लेने का अधिकार उन्हीं लोगों में निहित रहता है जिनके कल्याण के लिये शासन का यह तंत्र विकसित होता है, क्योंकि स्वयं जनता यह जानती है कि उसका भला बुरा किन–किन उपायों से हो सकता है। संक्षेप में लोकतंत्र का यही आशय है। यह वास्तव में 'जनता के द्वारा शासन' न भी हो तो जनता का तथा जनता के लिये अवश्य होता है।''

सन् 1947 ई0 में भारत की आजादी के बाद जब यह विचार किया जा रहा था कि स्वाधीन भारत में किस तरह की शासन पद्धति अपनायी जाये तो हमारे संविधान निर्माताओं ने यह देखते हुये कि मानव शक्ति–उन्मुख करने के लिये कोई भी व्यवस्था इतनी अधिक प्रबल नहीं है जितना कि लोकतंत्र। वास्तव में देखा जाये तो राजनीति का शिष्टतम पड़ाव लोकतंत्र ही है। इस व्यवस्था के तहत यहाँ का जनमानस अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप अपना भविष्य तय करती है। साथ ही स्वर्णिम विकास के अवसर की उपलब्धि भी चाहती है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'लोकतंत्र स्वर्णिम विकास के

लिये केवल अवसर ही उपलब्ध करा सकता है, उसमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को समृद्धि, ऐश्वर्यवान और विद्वान बना सके। हाँ लोकतंत्र की विशेषता यह अवश्य है कि इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिये समृद्धि और विद्वान बनाने के अवसर और प्रबुद्धता की ओर बढ़ने के मार्ग जरूर उपलब्ध होते हैं। भारतीय संविधान लोकतंत्र के लिये प्रतिबद्ध है और इस प्रतिबद्धता को शब्द भी दिये गये हैं, लेकिन इन शब्दों से अधिक महत्वपूर्ण यह है कि लोकतंत्र को श्रेष्ठतम मूल्यों, परम्पराओं, आदर्शों और परिपाटियों के साथ जोड़ा गया है अथवा नहीं। यदि लोकतंत्र से इन सभी श्रेष्ठतम मूल्यों, परम्पराओं, आदर्शों और परिस्थितियों को हटा दिया गया तो फिर वह अपनी समस्त गतिशीलता खो बैठेगा और जिस तंत्र में गतिशीलता न हो उसे लोकतंत्र कहा ही नहीं जा सकता।''

वास्तविक लोकतंत्र उस समय स्थापित होता है जब सभी नागरिक न केवल सत्ता स्पर्धा में समान रूप से सहभागी होते हैं, वरन निर्माण प्रक्रिया में भी बराबर के भागीदार होते हैं। इस दृष्टि से आदर्श लोकतंत्र तभी स्थापित हो सकता है। जब सभी नागरिक मिलकर विचार करें व निर्णय लें, परन्तु आधुनिक विशाल राष्ट्र राज्यों में ऐसा कर पाना सम्भव नहीं है। अतः सर्वत्र प्रतिनिधि प्रजातंत्र को अपनाया गया है।''

लोकतंत्र की श्रेष्ठता के अनेक कारण हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें प्रत्येक व्यक्ति को शिखर तक पहुँचने का अवसर मिल सकता है। अन्य तन्त्रों में सामूहिक नेतृत्व की परम्परा हो या एकल नेतृत्व की, हर व्यक्ति को शीर्ष पर देखने की कल्पना ही नहीं हो सकती। एकतंत्र और अधिनायकतंत्र में सत्ता के विरोध में बोलने वाला निश्चित होकर नहीं जी सकता। इतिहास बताता है कि ऐसे व्यक्ति को अनेक प्रकार की यातनाएं अथवा मृत्यु दण्ड झेलने के लिये तैयार रहना पड़ता है जबकि लोकतंत्र में राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री को भी न्यायालय के कटघरे में खड़ा किया जा सकता है। जन आकांक्षाओं की पूर्ति का अवकाश जितना लोकतंत्र में है, एकतंत्र में नहीं हो सकता। लोकतंत्र में अच्छाइयों की प्रबल सम्भावना बनी रहती है। लोकतंत्र अपेक्षाकृत सर्वोत्तम शासन तंत्र वहाँ है, जहाँ यदि इस तंत्र को संचालित करने वाले और उनका चयन करने वाले व्यक्ति सही हैं। लोकतंत्र सबसे दुर्बल शासन–तंत्र है, यदि नेता और जनता सही नहीं हैं। लोकतंत्र में लिखने, बोलने और सोचने की स्वतंत्रता है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि व्यक्ति उच्छृंखल हो जाये लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को सत्ता के सिंहासन पर बैठने का अधिकार है। पर चरित्र, बल और बुद्धि बल से शून्य व्यक्ति के हाथों में सत्ता आती है, तब उसका क्या परिणाम हो सकता है ? जहाँ एक ओर शासन का प्रजातांत्रिक स्वरूप समानता, स्वतंत्रता व स्वनिर्णय को सम्भव बनाता है। वहीं लोकतंत्र राजनीतिक सत्ता वितरण का वह स्वरूप है जो सामाजिक व आर्थिक भेदभाव से ऊपर उठकर समाज में प्रत्येक सदस्य को शासन का सहभागी बनाता है लोकतंत्र सबके लिये न केवल अपना शासक चुनना सम्भव बनाता है, वरन सभी के लिये शासक बनने के अवसर भी प्रदान करता है। भारत के संविधानकारों ने लोकतंत्र की इस उत्कृष्ट विशेषता को पहचानते हुये लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को देश में लागू किया।

भारतीय लोकतंत्र अपने सत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर चुका है और इसमें एक नया प्रभु वर्ग अपने तय किये हुये मानकों के अनुसार विकसित हो रहा है। अब तक के सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक विश्लेषणों में बहुत बड़ा होते हुये भी भारतीय अभिजन वर्ग सीमित और संकुचित हैं। अत्याधुनिक बहुराष्ट्रीय व्यक्तित्वों वाले माइकल जैक्सन की संतानों से लेकर विश्व सुन्दरियों के प्रशंसकों, सौन्दर्य बाजार के दुकानदारों से मेघालय, बस्तर और केरल के आदिवासी क्षेत्रों के प्रभु वर्ग को आकार और

संख्या सहित समझा जा सकता है। आज के भारत में पिछले सौ वर्षों से विकसित होते हुये प्रभु वर्ग ने अपनी खास पहचान बना ली है ''चार हजार से कुछ अधिक विधायक और सांसद जिसमें सभी मंत्री और महत्वपूर्ण राजनेता शामिल हैं, पूरे देश पर राज कर रहे हैं। दस हजार के लगभग पूर्व सांसद–विधायक और इनके प्रमुख सहयोगी इस तंत्र में शामिल हैं। लगभग दस हजार ही केन्द्रीय और राजस्तरीय नौकरशाह और इतनी ही संख्या में देश के पूंजीपति और व्यापारी इस अभिजन वर्ग के प्रमुख घटक हैं। एक लाख के लगभग वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी, तकनीकी विशेषज्ञ, सामाजिक कार्यकर्ता, पत्रकार, साहित्यकार और विचार–निर्माता भी शासक वर्ग में शामिल हैं। देश भर में फैले हुये लगभग बीस हजार प्रमुख अपराधी, हत्यारे और तश्कर भी भारतीय प्रभु वर्ग के अविच्छिन्न अंग हैं।''इन सभी समुदायों और वर्गों के बीच एक अलिखित, किन्तु बहुत ही स्पष्ट और मजबूत समझौता है। उनकी आपसी समझदारी ही तमाम जटिलताओं, झंडों, बैनरों, नारों और विविध पहचानों के पीछे लोकतंत्र के इस व्यापक शासन–तंत्र को चलाती हैं।'' इस प्रभु वर्ग में शामिल पूंजीपतियों, सामंतों, द्विज जातियों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों, दलितों और आदिवासियों की शिक्षा, रहन–सहन, इच्छाएं और सपने एक जैसे ही हैं। यह भारतीय मध्य वर्ग अपने को दुनियाँ के सबसे बड़े तीसरे बाजार के रूप में पेश करता है। यही भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण और उपभोक्तावाद का आधार है। इन तत्वों के प्रवेश की वजह से भारतीय लोकतंत्र में आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है जिसके फलस्वरूप राजनीति में विवेकहीनता, स्वार्थ लोलुपता, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण और माफियाकरण की प्रवृत्तियां मुखर हुई हैं। अब भारत में धर्म एवं जाति के नाम पर सरकारों का निर्माण हो रहा है। देश की बेरोजगारी, गरीबी, प्रदूषण, सामाजिक असमानता, दहेज प्रथा, उत्तम स्वास्थ्य, बाल विवाह, बाल श्रम, निरक्षरता की समाप्ति, भारतीय खेलों का गिरता स्तर आदि महत्वपूर्ण मुद्दे भारतीय राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखते हैं। भारतीय लोकतंत्र में आम आदमी की साझेदारी कहीं न कहीं बाधित हो रही है क्योंकि वह भयमुक्त नहीं है। भयमुक्त समाज में सामान्य आदमी किसी भय, लालच, आतंक, प्रलोभन से दूर रहकर उसकी वैचारिक स्वतंत्रता और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उसे स्वतः ही राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ देती है। जो गरीब है, जो पिछड़ा है। वह प्रभावशाली लोगों की विरासत से आज भी मुक्त नहीं हो पाया है। इसलिये उसकी अभिव्यक्ति राजनीति की मुख्यधारा को नहीं स्वीकार कर सकी, जिससे लोकतांत्रिक संस्कृति की जड़ें कमजोर होती जा रही हैं।''

स्वतंत्रता के लगभग बासठ वर्ष बाद लोकतंत्र में अनेक विरोधाभास, विसंगतियां एवं कमजोरियाँ व खामियां दृष्टिगोचर हुई हैं। इसे एक दूसरी दृष्टि से कहें तो भारतीय संसदीय प्रणाली अभी भी संक्रमण काल के दौर से गुजर रही है ..... राजनीतिक अस्थिरता और अनिश्चितता, बाहरी दबाव, आंतरिक संघर्ष और आर्थिक संकट जैसी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। संसदीय लोकतंत्र की अच्छाइयों पर ये सभी समस्याएं काले बादल की तरह घिर चुके हैं। लोकतंत्र का यह विशाल रथ आज कीचड़ में फंसता जा रहा है। रथ के सारथी उसे कीचड़ से बाहर निकालना चाहते हैं, पर निकालने की कला से वे अनभिज्ञ हैं। वे जितनी शक्ति लगा रहे हैं, रथ उतना ही गहरा धंसता चला जा रहा है। कारण स्पष्ट हैं कि सारथी योग्य नहीं हैं। उनकी योग्यता के लिये कोई मानक भी निर्धारित नहीं है। सत्ता और अर्थ के प्रभाव अथवा जाति और सम्प्रदाय की प्रतिबद्धता से लोकसभा और विधानसभाओं के टिकट मिलते हैं। मतदाता प्रलोभन, भय और प्रतिबद्धता के घेरे में खड़ा है। जहाँ वोट बटोरने के लिये वांछनीय एवं अवांछनीय सभी प्रकार के उपाय काम में लिये जा

रहे हैं। तब वहाँ योग्य व्यक्तियों का चयन कैसे होगा ?

जिस तरह मानव शरीर रीढ़ के आधार पर चलता है उसी तरह लोकतंत्र चुनाव के आधार पर चलता है। इस अर्थ में चुनाव लोकतंत्र की रीढ़ है। चुनाव का लक्ष्य होता है – सही काम के लिये सही व्यक्तियों का चयन। वर्तमान की चुनाव प्रक्रिया को देखकर लगता है कि वह मूल लक्ष्य से विस्मृत हो गया है और जैसे – तैसे सत्ता हथियाना चुनाव का लक्ष्य बन गया। इस चुनाव ने उम्मीदवार, मतदाता और चुनाव आयोग को ही नहीं, लोकतंत्र की गरिमा को धूलि–धूसरित कर दिया है। ''लोकतंत्र की जड़ को मजबूत करने के लिये चुनाव की प्रक्रिया को स्वस्थ बनाना जरूरी है। चुनाव की प्रक्रिया गलत होगी तो लोकतंत्र की जड़ें खोखली होती रहेंगी। इस बात को सब लोग समझते हैं कि चुनावी भ्रष्टाचार द्रोपदी का चीर बन रहा है, किन्तु उसका प्रतिवाद करने की क्षमता को पक्षाघात हो गया है। एक गहरी खामोशी, एक गहरी चुप्पी बढ़ती जा रही है। बुराई को देखकर आंख मूंदना या कानों में अंगुलियां डालना ही पर्याप्त नहीं है। उसके विरोध में व्यापक जन चेतना जगाने की जरूरत है। इसके साथ ही आज के राजनैतिक दलों को सोचना है कि वे क्या करना चाहते हैं भारत में लोकतंत्र की हत्या या फिर जनता द्वारा जनता के लिये और जनता की सरकार बनाना। वोटर की अहम जिम्मेदारी यही है कि वह सिर्फ मोहर मारने या बटन दबाने तक ही सीमित न रहे। वोट के पंचवर्षीय कौथीग के आने तक उसे सक्रिय और सचेत रहना पड़ेगा ताकि आम जनमानस के व्यापक हितों का कोई भी प्रतिनिधि गला न घोंट सके।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारत में लोकतंत्र का भविष्य उज्जवल है। लोकतंत्र की गति भले ही धीमी होती है पर इसमें बेहद लचीलापन और सहनशीलता होती है। इसलिये हमारे देश ने स्वतंत्रता के बाद सैकड़ों घाव, सैकड़ों असहिष्णुताएँ बर्दाश्त कीं और फिर भी लोकतंत्र बना रहा और भविष्य में भी बना रहेगा क्योंकि सांस्कृतिक विविधताएँ ही लोकतंत्र का आधार हैं।

सहायक संदर्भ ग्रन्थ

- सिंह, महेश्वर भारतीय लोकतंत्र : समस्याएँ व समाधान– साहित्यागार, प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड, जयपुर, 1999
- संधसु, ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त– हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1983
- गाबा ओम् प्रकाश गाबा, राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा, प्रकाशक–मयूर पेपर बैक्स नोएडा,संस्करण–2005
- खन्ना बी0एन0एवं अरोड़ा, लिपाक्षी,भारत की विदेश नीति, प्रकाशक–विकास पब्लिशिंगहाउस प्रा0लि0,नई दिल्ली, संस्करण–2010
- पांडे रामकृष्ण,भारतीय प्रजातांत्रिक प्रक्रिया एवं नागरिक असंतोष– पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1994.
- दीपक ओम प्रकाश,आधुनिक लोकतंत्र–अनुवादक– नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1988.
- शर्मा अशोक,भारत में लोकतंत्र और निर्वाचन– अनुसंधान एवं विशद् अध्ययन संस्थान, जयपुर, 1994.
- सिंह डॉ0 निशांत,लोकतंत्र और चुनाव सुधार–स्वप्निल सारस्वत, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2008.
- मिश्र विद्यानिवास, लोक और लोक का स्वर, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण 2000
- कोठारी रजनी (सं) ,कास्ट इन इंडियन पालिटिक्स, ओरिएन्ट ब्लैक स्वान,नई दिल्ली 2010 मेनका गाँधी बनाम भारत सरकार, AIR 1978